National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2016; 1(5): 70-74
© 2016 NJHSR
www.sanskritarticle.com
Received: 17-04-2016
Accepted: 18-04-2016

डॉ. ममता गुप्ता
पी.डी.एफ.,
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग,
रा.दु.वि.वि., जबलपुर

Correspondence:
डॉ. ममता गुप्ता
पी.डी.एफ.,
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग,
रा.दु.वि.वि., जबलपुर

काव्यमीमांसा में सौन्दर्यशास्त्रीय सन्दर्भ

डॉ. ममता गुप्ता

' **सौन्दयशास्त्र**' शब्द भारतीय वाङ्मय के लिए अधिक प्राचीन नहीं है। यद्यपि चारुत्व के अर्थ में सुन्दर शब्द का सामान्य रूप से प्रयोग रामायण काल से होता आया है तथापि उसे वह पारिभाषिक वैशिष्ट प्राप्त नहीं है जो पश्चिमी काव्यशास्त्र में है। भारतीय काव्य और काव्यशास्त्र दोनों में ही 'सुन्दर' या **'सौन्दर्य'** की अपेक्षा इसके अन्य पर्यायों का प्रयोग अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। अमरकोश में **'सुन्दर'** शब्द का उल्लेख इन पर्यायों के साथ किया गया है।

सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्।
कान्तं मनोरमं रुच्यं मनोज्ञं मञ्जु मञ्जुलम्।।[1]

वस्तुतः सौन्दर्यशास्त्र पाश्चात्य चिन्तन परम्परा का अपना विशिष्ट अविष्कार है। आधुनिक भारतीय साहित्य जगत् में ' सौन्दर्यशास्त्र' पश्चिम के । Aesthetics शब्द का अनुवाद मात्र है। । Aesthetics शब्द मूलतः यूनानी भाषा के aisthetikos से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है ' ऐन्द्रिय संवेदना' । आंग्ल भाषा में । Aesthetics शब्द 18वीं शताब्दी में जर्मन भाषा के Ästhetisch अथवा फ्रेंच भाषा के Esthétique के माध्यम से आया है कॉन्ट, हेगल, बाउमगार्टेन आदि ने कला के क्षेत्र में इसका प्रयोग करना आरम्भ किया।[2]

पश्चिमी विचारकों द्वारा सौन्दर्य एवं कला का विवेचन दर्शन के एक विषय के रूप में आरम्भ से किया जाता रहा है। शिल्प और कौशल के रूप में कला की अवधारणा ग्रीक दर्शन के उदयकाल से प्राप्त होती परन्तु ललित कलाओं के परिप्रेक्ष्य में सौन्दर्यशास्त्र की अवधारणा 18वीं शताब्दी से प्राचीन नही मानी जा सकती है। अलेक्जेन्डर बाउमगार्टेन (1714-62) पहले लेखक हैं जिन्होंने आधुनिक अर्थों में एक्टेक्टिक्स का प्रयोग किया, किन्तु समस्त कलाओं में निहित आधार भूत तत्वों के दर्शन के रूप में एस्थेटिक्स को प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय हेगल (1770-1831) को जाता है। हेगल ने बिखरे हुए सौन्दर्य सम्बन्धी विचारों का संकलन करके इसे सौन्दर्यशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है।[3]

अमेरिकी शोधपत्रिका ' जर्नल ऑफ एस्थेटिक्स एण्ड आर्ट क्रिटिसिज्म' के सम्पादक टॉमस मुनरो, जो भारतीय चिन्तन परम्परा के प्रशंसक थे, भी मानते हैं कि ' एशियाई दर्शन के अधिकांश इतिहासों में सौन्दयशास्त्र, सौन्दर्य, कला तथा इनसे सम्बन्धित शब्दों का उल्लेख तक नहीं मिलता।' यह कथन पूर्ण रूप से तथ्यपरक न भी हो तो भी कुछ अंश में यह सही माना जा सकता है।[4]

पाश्चात्य परम्परा में सौन्दर्यशास्त्र को कला और प्रकृति में निहित सौन्दर्य, उसकी प्रकृति, सृजन प्रक्रिया, उसकी स्थितियाँ एवं उनकी नियमानुरूपता के रूप में परिभाषित किया गया हे। इस परिभाषा में सौन्दर्यशास्त्र की और मनोवैज्ञानिक दोनों दृष्टियों का समावेश है।
यद्यपि प्राचीन भारतीय साहित्य में सौन्दर्य मीमांसा का विकास स्वतन्त्रशास्त्र के रूप में नहीं हुआ तथापि इसमें सौन्दर्य चिन्तन की प्रौढ़ परम्परा प्राप्त होती है। भारतीय मनीषियों ने स्थल-स्थल पर कलात्मक सौन्दर्य के स्वरूप, सृजन-प्रक्रिया एवं आस्वादन आदि का मार्मिक विवेचन किया है यथा- **चित्रे निवेश्य परिकल्पित सत्वयोगा ।**[5] अथवा आचार्य वामन ने सौन्दर्यमलङ्कार[6] कह कर सौन्दर्य को परिभाषित भी किया है। आचार्य

आनन्दवर्धन ने काव्य सर्वस्य प्रतीयमार्थ को लावण्य[7] की संज्ञा दी जो वस्तुतः सौन्दर्य का ही सूक्ष्मतम रूप है। इसी प्रकार पण्डितराज जगन्नाथ ने भी उस रमणीयता चर्चा की जो लोकोत्तर आह्लाद को उत्पन्न करता है।[8]

यद्यपि सौन्दर्यशास्त्र के क्षेत्र में काव्य के अतिरिक्त अन्य ललित कलाएँ भी आती हैं तथापि भारतीय सौन्दर्य मीमांसा का मूल स्रोत काव्यशास्त्र को ही मानना होगा। इसके सिद्धान्त शब्दार्थगत सौन्दर्य पर आधारित होने पर भी अन्य कलाओं पर भी उतने सटीक है। यहाँ पर प्रसिद्ध भारतीय सौन्दर्य मीमांसक डॉ. नगेन्द्र का कथन, दृष्टव्य है -

भारतीय सौन्दर्य-शास्त्र का मूल आधार तथा केन्द्र है काव्यशास्त्र। इसमें अन्य कलाओं का विवेचन तो प्रायः नही है। अधिक से अधिक काव्य के उपजीव्य रूप में उल्लेख मात्र है किन्तु शब्द अर्थ के माध्यम से व्यक्त सौन्दर्य का जैसा परिपूर्ण एवं सूक्ष्मगहन तत्व विवेचन यहाँ हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें सन्देह नही कि काव्यशास्त्र का सौन्दर्य विवेचन शब्द अर्थ के माध्यम तक सीमित है किन्तु फिर भी उनकी मौलिक प्रतिपत्तियाँ इतनी सार्वभौम है कि अन्य कलाओं के लिए भी वे समान रूप से उपयोगी और सार्थक है।[9]

काव्यशास्त्र में सौन्दर्य के मूल तत्वों, विविध पक्षों एवं अङ्गों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन प्राप्त होता है। रस अलङ्कार, रीति, ध्वनि, वक्रोति आदि भारतीय सौन्दर्य मीमांसा के ही परिणाम हैं। इन सभी के माध्यम से ' **सौन्दर्यशास्त्र**' के सभी पक्षों का तलस्पर्शी विश्लेषण किया गया है। सौन्दर्य वस्तुनिष्ठ है अथवा व्यक्तिनिष्ठ सौन्दर्यशास्त्र की इस समस्या का समाधान भी रसास्वाद की प्रक्रिया में प्राप्त हो जाता है। वस्तुतः रस सिद्धान्त काव्यसृजन से लेकर आस्वाद तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया के रूप में विकसित हुआ है। आरम्भ में (भट्टलोल्लट) जो मुख्यतः विषयगत था उसकी परिणिति अन्ततः विषयिगत के रूप में हुई। भरत का नाट्य रस अभिनवगुप्त के सहृदयगत रस के रूप में पर्यवसित हुआ है।

विचार क्रम से देखा जाय तो यह ज्ञात होता है कि भारतीय काव्यशास्त्र दृश्य काव्य से श्रव्य काव्य की ओर निष्पन्न होने वाली अवधारणा के रूप में विकसित हुआ। इसके साथ यह भी प्रमाण मिलता है कि काव्यशास्त्रीय अवधारणाओं विशेष कर रस सम्बन्धी अवधारणा से सङ्गीत कला और वास्तुकला में आस्वाद के सिद्धान्त को विकसित किया गया**,** जिस प्रकार रसब्रह्मवाद प्रचलित था उसी प्रकार नादब्रह्मवाद एवं वास्तु ब्रह्मवाद की परिकल्पना की गई।

प्रस्तुत आलेख में यायावरीय आचार्य राजशेखर के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ ' **काव्यमीमांसा**' का अध्ययन सौन्दर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

सौदर्यशास्त्र का केन्द्र बिन्दु है सौन्दर्य तथा इसके मुख्य दो तत्व हैं सौन्दर्य का स्वरूप और सौन्दर्यानुभूति। सौन्दर्य का स्वरूप कर्ता एवं कलाकृति से सम्बद्ध है तथा सौन्दर्यानुभूति सहृदयसमाजिक एवं आलोचक से।

डॉ. नगेन्द्र ने सौन्दर्य के स्वरूप की मीमांसा के तीन बिन्दुओं का उल्लेख किया है।[10]

1. भौतिक सौन्दर्य
2. रूपामक सौन्दर्य
3. भावात्मक सौन्दर्य

भारतीय वाङ्मय में सौन्दर्य के उपर्युक्त स्तर भेदों की स्वीकृति आरम्भ से मिलती है। कलाशास्त्र तथा काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में विविध कलाओं के भौतिक उपादानों तथा रचना प्रविधियों का अत्यन्त विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन मिलता है। पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्री कलाकृति को यद्यपि आवयविक (घटको) एकता से पूर्ण**,** स्वायत्ता मानते हैं अर्थात् उनके मत में उसके विविध घटक पूर्ण रूप से परस्पर आबद्ध रहते हैं और वह एक पूर्ण इकाई के रूप में ही सौन्दर्य को उत्पन्न करती है तथापि उसके विश्लेषण के निमित्ता उन्हें भी कलाकृति के अवयवों को पृथक्-पृथक् करके ही विचार करना पड़ता है।
आचार्य अभिनवगुप्त ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है -

तेनाखण्डबुद्धिसमास्वाद्यमपि काव्यमपोद्धारबुद्धया विभजते।[11]

आचार्य राजशेखर भी काव्य के प्रमुख घटक शब्द और अर्थ के एकत्व का ही प्रतिपादन किया है उनके अनुसार -

शब्दार्थयोर्यथावत्सहभावेन विद्या साहित्यविद्या।[12]

पश्चिम में काव्यकृति (कलाकृति) का विष्लेषण मुख्य दो आधारों पर किया गया है -

1. वस्तु (कन्टेंट)**,**
2. रूप (फार्म) जिसे संघटना भी कह सकते हैं। यहाँ पुनः अभिनव- गुप्तपादाचार्य से साम्य दृष्टव्य है **–**

तथापि द्विविधं चारुत्वं स्वरूपमात्रनिष्ठं संघटनाश्रितं च।[13]

भौतिक सौन्दर्य के अन्तर्गत सौन्दर्य के भौतिक उपादान आते हैं। काव्यमीमांसा में काव्य के भौतिक उपादानों की विस्तार से चर्चा है। काव्य सौन्दर्य के भौतिक साधन है वर्ण और उनके संघात से बना शब्द। वर्ण और पद के सम्यक् ज्ञान के लिए आचार्य राजशेखर ने पदवाक्य विवेक नामक सम्पूर्ण अध्याय की रचना की है।

व्याकरणस्मृतिनिर्णीतः शब्दो निरुक्तनिघण्ट्वादिभिनिर्दिष्टस्तदभिधेयोऽर्थस्तौ पदम् ।[14]

इस अध्याय में उन्होंने काव्य सौन्दर्य भौतिक उपकरण पद की सुब्वृत्ति, समासवृत्ति आदि अनेक प्रकारों तथा उनके सम्यक् प्रयोगों का विस्तार से वर्णन किया है।[15]

सौन्दर्य का दूसरा स्तर है रूपात्मक सौन्दर्य इसके अन्तर्गत रचना का सौन्दर्य आता है। राजशेखर ने रचना के मुख्य उपकरण वाक्य का भी विस्तृत विवेचन किया है। काव्यमीमांसा षष्ठ एवं सप्तम् अध्याय में वाक्यरचना सम्बन्धी सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। छठे अध्याय में संरचना की दृष्टि से एकाख्यात, अनेकाख्यात आदि वाक्य के दष प्रकार कहे गये हैं। सप्तम् अध्याय में प्रणेता को दृष्टि से पुनः भेद करके वाक्य रचना की अनेक संयोजनाओं का विधान उदाहरण साहित्य प्रस्तुत किया गया है।[16] काव्यमीमांसा में संरचना की विभिन्न रीतियों तथा उन्हें अनेक रूपों वाला बनाने में सक्षम काकु का भी उल्लेख है।

वैदर्भी गौडीया पाञ्चाली चेति रीतयस्तिस्रः।
आसु च साक्षन्निवसति सरस्वती तेन लक्ष्यन्ते।।
रीतिरूपं वाक्यत्रितयं काकुः पुनरनेकयति।[17]

भावात्मक सौन्दर्य वह अर्थगत सौन्दर्य है जो कलाओं के भौतिक रूप से व्यञ्जित होता है यह काव्य में अर्थ का सौन्दर्य है। इसे रसगत भी माना जा सकता है। भावात्मक सौन्दर्य के अन्तर्गत विषय वस्तुगत सौन्दर्य भी आता है। आचार्य राजशेखर ने विषयवस्तु का विस्तार से वर्णन किया है। आठवें अध्याय में विषय वस्तु की विविधता तथा उसकी उचित योजना की विवेचना उदाहरण सहित की गई है।

श्रुतिः स्मृति इतिहासः पुराणं प्रमाणविद्या राजसिद्धान्तत्रयी लोको विरचना प्रकीर्णकं च काव्यर्थानां द्वादश योनयः इति आचार्यः उचितसंयोगेन योक्तृसंयोगेन उत्पाद्यसंयोगेन संयोगविकारेण च सह षोड्ष इति यायावरीयः।[18]

सौदर्यशास्त्र का दूसरा प्रमुख विवेच्य तत्त्व हैं सौन्दर्यानुभूति जो सौन्दर्य सहृदयसमाजिक एवं आलोचक से सम्बद्ध है। पाश्चात्य सौन्दयशास्त्र में सौन्दर्यानुभूति के सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो चिन्तन धाराएं प्राप्त होती है- रूपवादी तथा भाववादी। इन दोनों के मध्य सर्वाधिक विवादित सिद्धान्त है सौन्दर्य का वस्तु अथवा व्यक्तिनिष्ठ होना अर्थात् सौन्दर्य वस्तु का गुण है अथवा भावक की प्रतीति है। कलानुभूति को प्रत्यक्ष जीवनानुभूति से सर्वथा विलक्षण और असंपृक्त मानने वाले रूपवादी चिन्तकों का मत है कि सौन्दर्य वस्तु के आकार-प्रकार तथा संरचना की समन्विति में निहित है उनके अनुसार सौन्दर्यानुभूति का उद्बोधन कलाकृति के रूप में ही संभव है अतः कलाकृति में रूप का ही महत्व होता है। जबकि भावादियों के अनुसार सौन्दर्य हमारी भावनात्मक प्रवृत्ति पर आश्रित है इसमें मनुष्यों के स्वयं की भावदशा, बोधआवेग और क्रियाओं का संयोग होता है अतः यह विषयगत न होकर विषयीगत है।[19]
इस सन्दर्भ में महाकवि कालिदास यह पद्य उल्लेखनीय है-

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांष्च निषम्य शब्दान्,
पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तत्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं,
भावस्थिराण्यपि जननान्तरसौहृदानि।।[20]

काव्य के क्षेत्र में सौन्दर्यानुभूति का अर्थ काव्यानुभूति है जिसे संस्कृत काव्यशास्त्र में रस की संज्ञा से अभिहित किया गया है। काव्यमीमांसा में इस सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत प्राप्त होते है। काव्य मीमांसा के नवम अध्याय में आचार्यराजशेखर विभिन्न प्रकार के अर्थों का वर्णन करते हैं इसी प्रसङ्ग में वे इस समस्या पर भी विचार करते है कि रसवस्तुनिष्ठ माना जाना चाहिए अथवा व्यक्तिनिष्ठ। यहाँ वे आचार्य आपराजिति नाम आचार्य के मत को उपन्यस्त करते हैं -

अस्तु नाम निःसीमार्थसार्थः। किन्तु रसवत एव निबन्धो युक्तो न नीरसस्य इति आपराजितिः।[21]

आपराजिति के मत में रसवत्ता अर्थों में ही रहती है इसलिए उन्हीं अर्थों का निबन्धन किया जाना चाहिए जो रसवान हो नीरस अर्थों का निबन्धन काव्य में सर्वथा अनुचित है। वे कहे हैं कि कवि नदी, पर्वत, सागर, नगर, अश्वादि के वर्णनों का जो प्रयत्न करते

हैं वह अपनी काव्यशक्ति का प्रचार मात्र करना चाहते है उसे विद्वज्जन उचित नहीं मानते अर्थात् आपराजिति के मत में ऐसे वर्णन रसानुभूति में सहायक नहीं होते।

आचार्य राजशेखर इस विचार को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए कहते हैं -

' आम्' इति यायावरीयः। अस्ति च चानुभूयमानो रसस्यानुगुणो विगुणष्चार्थः। काव्ये तु कविवचनानि रसयन्ति विरसयन्ति च नार्थाः, अन्वय- व्यतिरेकाभ्यां चेदमुपलभ्यते।[22]

उनका मत है कि अर्थ रसानुकूल अथवा प्रतिकूल हो सकते हैं परन्तु काव्य में कवि के वचन नही उसे सरस या विरस बनाते हैं। इस उक्ति को सिद्ध करने के लिए वे नदी, पर्वत, आदि की रसवत्ता के उदाहरण प्रस्तुत करते है -

एतां विलोक्य तनूदरि ताम्रपर्णी-
मम्भोनिधौ विवृतशुक्तिपुटोद्ध्रतानि।
यस्याः पयांसि परिणाहिषु हारमूर्त्या
वामभ्रुवां परिणमन्ति पयोधरेषु।।[23]

उनका स्पष्ट मत है कि -

कुकविर्विप्रलम्भेऽपि रसवत्तां निरस्यति ।
अस्तु वस्तुषु मा वा भूत्कविवाच रसः स्थितः।[24]

यहाँ वे रसनिष्पत्ति, सौन्दर्यानुभूति को व्यक्तिनिष्ठ मानने के पूर्ण पक्षपाती दिखाई दे रहें हैं। अपने इस मत के समर्थन में वे जैनाचार्य पाल्यकीर्ति का मत प्रस्तुत करते हैं -

यथा तथा वास्तु वस्तुनो रूपं, वक्तृप्रकृतिविशेषायत्ता तु रसवत्ता। तथा च यमर्थं रक्तः स्तौति तं विरक्तो विनिन्दति मध्यस्थस्तु तत्रोदास्ते।[25]

अर्थात् वस्तु का स्वरूप कुछ भी हो सकता है वह स्थिर नहीं रहता है यह तो वक्ता की प्रकृति उसकी मनःस्थिति पर निर्भर है। प्रायः देखा जाता है कि अनुरागी जिस पदार्थ की स्तुति करता है, विरक्त उसी वस्तु की निन्दा करता है, जबकि तटस्थ व्यक्ति इन दोनों से उदासीन रहता है। यथा -

येषां वल्लभया समं क्षणमिव स्फारा क्षपा क्षीयते,
तेषां शीततरः शशी विरहिणामुल्केव सन्तापकृत्।
अस्माकं न तु वल्लभा न विरहस्तेनोभयभ्रंषिना-
मिन्दु राजति दर्पणाकृतिरयं नोष्णो न वा शीतलः।।26

यहाँ आचार्यराजशेखर अपनी विदूषी पत्नी अवन्तिसुन्दरी के मत को भी उपस्थित करते हैं जो पाल्यकीर्ति के मत को और स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि वस्तु का एक निश्चित स्वभाव नहीं होता, विशेष रूप से काव्य में वस्तु नियत स्वभाव वाली नहीं हो सकती क्योंकि वहाँ वस्तु का रूप विदग्धकवि की प्रतिपादन शैली पर ही निर्भर होता है -

विदग्धभणितिभङ्गिनिवेद्यं वस्तुनो रूपं न नियतस्वभावम्।

यदाह-

वस्तुस्वभावोऽत्र कवेरतन्त्रो गुणागुणावुक्तिवषेन काव्ये।
स्तुवन्निबध्नात्यमृतांमिन्दुं निन्दंस्तु दोषाकरमाह धूर्त्तः।।[27]

अवन्तिसुन्दरी की दृष्टि में कोई भी वस्तु न गुणों से अनुप्राणित है और न दोष से संयुक्त। प्रतिभावान् कवि के द्वारा वह सौन्दर्य युक्त अथवा निन्द्य हो जाती है जिस प्रकार प्रशंसा करने वाला कवि चन्द्र को अमृतांशु तथा निन्दा करने वाला उसे दोषाकार कहता है। **' उभयमुपपन्नम्'** इति यायावरीयः कह कर आचार्य राजशेखर पाल्यकीर्ति और अवन्तिसुन्दरी के मतों को युक्तिसङ्गत मानते हुए रसों को व्यक्तिनिष्ठता को स्वीकार करते है। इस विषय में रस के प्रति अभिनिवेशी आचार्य आनन्दवर्धन का अभिमत भी दृष्टव्य है -

श्रृङ्गारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स एव वीतरागष्चेन्नीरसं सर्वमेव तत्।।[28]

श्राजशेखर को रस का व्यक्तिनिष्ठतव ही अभीष्ट था। इसी कारण उन्होंने पाल्यकीर्ति और अवन्तिसुन्दरी के मतों को अङ्गीकार किया है। वस्तुतः पाल्यकीर्ति और अवन्तिसुन्दरी ने अपने मतों की पुष्टि के लिए जिन पद्यों को उद्धृत किया है वे रस की केवल कविनिष्ठता को ही प्रकट नहीं करते वरन् भावक के सम्बन्ध को भी विश्लेषित करते है। भावक यदि रस से युक्त है। या सौन्दयशास्त्र की वह जीवन के

अभिन्न संवेगों और अनुभवों से युक्त है तभी उसे रसानुभूति होती है, इसी कारण रसानुभूति सहृदयसामाजिक को ही होती है वीतरागी, विक्षिप्त या अबोध बालक को नहीं।

पाल्यकीर्ति के दिए उदाहरण में भी यही कहा गया है कि जो प्रिया के साथ हैं उनके लिए चन्द्रमा सुखद विरही मनोदशा वालों के लिए उल्का के समान सन्तापकारक और तटस्थ मनःस्थिति वाले के लिए मात्र चन्द्र ही है न सुखकारक और न दुःखकारक। अतः आचार्य राजशेखर सौन्दर्यानुभूति का रूपाश्रित न मानकर भावाश्रित है, उनका यह मन्तव्य इस पद से भी व्यंजित होता है।

इस प्रकार सौन्दर्याास्त्रीय दृष्टि से काव्य मीमांसा का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि यह ग्रन्थ सौन्दर्यमीमांसा की दृष्टि से रचा नही गया है तथापि इसमें सौन्दयशास्त्र के प्रायः समस्त अंगों का उल्लेख पर्याप्त रूप में प्राप्त होता है।

सन्दर्भ सूची

1. अमरकोश, तृतीय खण्ड
2. Late 18th century (in the sense 'relating to perception by the senses'): from Greekaisthē tikos, from aisthē ta 'perceptible things', from aisthesthai 'perceive'. The sense 'concerned with beauty' was coined in German in the mid 18th century and adopted into English in the early 19th centuryhttp: www.oxforddictionaries.com
3. रससिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र-निर्मला जैन पृष्ठ 44
4. ओरियन्टल एस्थेटिक्स पृष्ठ 17
   रससिद्धान्त और सौन्दयशास्त्र-निर्मला जैन पृष्ठ 44 पर उद्धृत
5. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 2/9
6. काव्यलङ्कार सूत्रवृत्ति 1-1-2
7. प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
8. यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।।(ध्व 1/4)
   रमणीयता लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता।
9. रसगङ्गाधर प्रथम आनन
   भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 196
10. वही, पृ. 134
11. ध्वन्यालोक लोचन (1/1 पर)
12. काव्यमीमांसा 2, पृ. 11
13. लोचन ध्वन्यालोक 1/1, पृ. 6
14. काव्यमीमांसा अध्याय 6 पृष्ठ 47
15. काव्यमीमांसा अध्याय 3
16. काव्यमीमांसा अध्याय 3
17. काव्यमीमांसा अध्याय 7 पृष्ठ 69
18. काव्यमीमांसा अध्याय 8 पृष्ठ 79
19. रससिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र-निर्मला जैन पृष्ठ 81
20. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, 5/2
21. काव्यमीमांसा 9, पृ. 100
22. काव्यमीमांसा 9, पृ. 101
23. का.मी. 9, पृ. 101
24. काव्यमीमांसा 9, पृ. 103
25. काव्यमीमांसा 9, पृ. 103
26. काव्यमीमांसा 9, पृ. 103
27. का.मी., 9, पृ. 104
28. ध्वन्यालोक 3/43 परिकर श्लोक